

हिन्दी दलित साहित्य : समीक्षात्मक स्वरूप

शबनम तब्बसुम

पी-एच0डी0, यू.जी.सी. नेट, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ0प्र0), भारत

Received- 22.06.2020, Revised- 26.06.2020, Accepted - 29.06.2020 E-mail: shabnamtabssum1980@gmail.com

सारांश : 'सीखा न मैंने जाति आधारित सम्मान करना चाहता हूँ मैं रहना

उन्मुक्त समाज में हो समान मानव मानव जहाँ।' – शत्रुघ्न कुमार

यह कविता सिर्फ एक व्यक्ति की नहीं बल्कि उस वर्ग की पुकार है जो सदियों से जाति आधारित समाज में कैद रहा है और समाज द्वारा दिए गए संत्रास को झेलता आ रहा है, पर वह अब इस जाति आधारित समाज से मुक्ति चाहता है। वह भी समान मानव की तरह जीना चाहता है।

विदित है कि साहित्य समाज में हो रहे सभी घटनाओं तथा परिवर्तनों का साक्षी होता है। हिंदी दलित-साहित्य भी दलितों की पीड़ा, वेदना, प्रताड़ना, अन्याय, शोषण इत्यादि का साक्षी है। दलित साहित्य वर्तमान समय का सबसे ज्वलंत एवं चर्चित विषय है। दलित साहित्य वह माध्यम है जिसके द्वारा दलित वर्ग के शोषण एवं उत्पीड़न का यथार्थ चित्रण होता है, साथ ही उसे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी करता है।

कुंजीभूत शब्द- उन्मुक्त समाज, संत्रास, शोषण, अन्याय, प्रताड़ना, साक्षी, वेदना, पीड़ा, साहित्य समाज, घटनाओं।

आज साहित्य विमर्शों के दौर से गुजर रहा है; जो वाद और संवाद के माध्यम से नवीन मूल्यों का निर्माण करना चाहता है। इन नवीन मूल्यों के निर्माण वे सभी वर्ग आ जाते हैं, जो सदियों से शोषित, पीड़ित, उपेक्षित एवं दमित है। आज 'दलित' शब्द सिर्फ 'अछूत' का अभिप्राय नहीं रह गया है, बल्कि अपने विस्तृत अर्थों में हरिजन, नारी, आदिवासी, अल्पसंख्यक, किन्नर, गरीब किसान एवं मजदूर अर्थात् समाज का वह तमाम तबका जो पिछड़ा हुआ है, शोषित व पीड़ित हैं; वह दलित है। अंग्रेजी में श्कमचतमेमकश् दलित शब्द के लिए इस्तेमाल किया जाता है। हिंदी साहित्य में 'दलित' शब्द कोई नया नहीं है, बल्कि उसकी अपनी एक ऐतिहासिक परम्परा रही है। बुद्ध, कबीर, तुलसी, प्रेमचंद, निराला, वेरियार, ज्योतिबा फूले, डा. भीमराव अम्बेडकर से लेकर अब तक के साहित्यकारों ने हिंदी दलित साहित्य को नया आयाम दिया है। प्राचीन काल में दलितों की स्थितियाँ अत्यन्त दयनीय थी। मध्यकाल में भी दलितों की स्थितियाँ ज्यों की त्यों बनी रही हैं; पर मानवतावादी मनीषियों एवं कवियों ने दलितों की स्थितियों का जिम्मेदार उच्चवर्ग को ठहराया और उन्हें खरी-खोटी सुनाई।

मध्यकाल में कबीर समाज से पूछते हैं;

“हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूद।

तुम कैसे बामन पांडे हम कैसे सूद।।”²

अर्थात् जब उच्च वर्ग एवं निम्नवर्ग सभी के रगों में दूध नहीं खून ही बहता है; फिर ये जातिगत भिन्नता क्यों ?

आधुनिक काल में पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव में

आने के कारण शिक्षाविदों, महापुरुषों एवं समाजसुधारकों ने दलितों की स्थितियों में सुधार लाने के लिए सराहनीय कार्य किए; फिर भी न तो दलितों की स्थितियों में कोई सुधार आया और न ही उनका शोषण कम हुआ, बल्कि उन्हें समस्त अधिकारों से वंचित रखा गया। समाज में जब भी अन्याय अपनी चरम पर होता है तब ऐसे मसीहा का जन्म होता है जो अन्याय से मुक्ति दिला सके। डॉ. अम्बेडकर ऐसे ही मसीहा थे, जिन्होंने सामाजिक असमानता के खिलाफ आवाज उठाई बल्कि अनेक स्थानों पर जोर देकर कहा; “दलितों का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है।” उन्होंने संविधान का निर्माण कर लोकतांत्रिक देश का गठन किया और विशेष रूप से दलितों के अधिकारों के लिए संवैधानिक प्रावधान बनाया। डॉ. अम्बेडकर ने दलितों को भी मंत्र दिए; ‘एजूकेट, ऑर्गनाइज एंड एजीटेड’ अर्थात् शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो।” डॉ0 अम्बेडकर के विचारों से न सिर्फ मराठा साहित्य प्रभावित हुआ बल्कि हिंदी साहित्य भी प्रभावित हुआ और उसी के परिणामस्वरूप हिंदी दलित साहित्य के रूप में नयी विधा की शुरुआत हुई।

दलित साहित्य की अवधारणा – वर्ण और जाति आधारित समाज से मुक्ति का नाम दलित साहित्य है। दलित साहित्य किसे कहा जाना चाहिए, इसमें काफी मतभेद है। दलित साहित्यकारों का मानना है कि; दलितों द्वारा लिखा जाने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। दलित ही दलित की पीड़ा को बेहतर ढंग से समझ सकता है और वही उस अनुभव की अभिव्यक्ति दे सकता है। यह



सच है कि स्वानुभूत होने के कारण दलितों द्वारा लिखे जाने वाले साहित्य में यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति होती है; पर यह भी सच है गैरदलित लेखकों जैसे—प्रेमचंद, निराला, अमृतलाल नागर, रेणु, गिरिराज किशोर जैसे कथाकारों ने भी दलितों की पीड़ा की यथार्थ अभिव्यक्ति दी है। प्रेमचंद की कहानी 'सद्गति' में दुखी चमार की जो अधोगति का चित्रण है, वह दलित साहित्य का उत्स कहा जा सकता है। रेणु की कहानी 'रसप्रिया' में दलित मृदंगिया द्वारा छोटे-छोटे बच्चों को 'बेटा' कहे जाने पर, मृदंगिया को उन छोटे बच्चों से माफी मांगनी पड़ती है। जो हमारे समाज के जातिगत संकीर्णता की कलई को उधेर कर रख देता है। निराला का उपन्यास 'कुल्ली भाट', अमृतलाल नागर का 'नाच्यौ बहुत गोपाल', गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट' आदि उपन्यासों में शोषण से मुक्ति की छटपटाहट को देखा जा सकता है। दलित साहित्य का आरम्भ एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में हुआ था, जिसका सूत्रपात 'दलित पैथर्स' से माना जाता है। हिंदी में दलित साहित्य अस्सी और नब्बे के दशक में एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में शुरू हुआ, जिसमें प्रमुखता से दलित साहित्यकारों ने हिस्सा लिया और उसे एक अलग साहित्यिक धारा के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। दलित साहित्य अलग-अलग भाषाओं में थोड़ी भिन्नता के साथ लिखे जाने के बावजूद, दलित साहित्य का स्वरूप प्रान्तीय न होकर अखिल भारतीय रहा है। अखिल भारतीय स्तर पर दलित साहित्यकारों ने एक स्वर में माना कि दलित साहित्यकारों द्वारा लिखा जाने वाला साहित्य ही दलित साहित्य हो सकता है, क्योंकि स्वयंभोगी होने के कारण सामाजिक विसंगतियों को यथार्थ रूप में वही व्यक्त कर सकते हैं।

दलित साहित्य की परिभाषा— 'दलित' शब्द साहित्य में जुड़कर एक नवीन साहित्यिक विधा का निर्माण किया, जिससे साहित्य में दलित संवेदना, मानवीय सरोकारों एवं दलित जीवन की त्रासदियों की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई। अतः अनेक विद्वानों ने दलित साहित्य को एक साहित्यिक विधा के रूप में परिभाषित करने का सराहनीय कार्य किया। कुछ परिभाषाएँ निम्नवत् हैं—

ओम प्रकाश वाल्मीकि के अनुसार—“‘दलित’ साहित्य अपने आप में बेहद व्यापक अर्थ रखता है। ‘दलित’ शब्द के भीतर छिपा गूढ़ अर्थ जिस भाव की व्याख्या करता है, वह एक पहचान है; उन लोगों की जो सदियों से कुचले, प्रताड़ित, उपेक्षित लोग हैं, जिन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में अपनी रचनात्मकता, दृढ़ता और मौलिकता सिद्ध की है। इस देश के निर्माण में अपना जीवन स्वाहा किया है। किन्तु सत्ता और उसके इर्द-गिर्द बिखरे स्वार्थी तत्वों ने उन्हें

कभी भी स्वीकार नहीं किया है।”³

विमल थोराट का मानना है; “दलित साहित्य उस विद्रोह का उन्मेष है जो किसी विशिष्ट जाति या व्यक्ति के विरुद्ध नहीं बल्कि 'स्व' की खोज में निकले पूरे समाज का पूर्व परम्पराओं का विद्रोह है एवं उनके अस्तित्व की स्थापना का प्रचार है।”⁴

कवल भारती के अनुसार; “दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है। अपने जीवन-संघर्षों में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।”⁵

अतः असमानता, अन्याय, शोषण एवं उत्पीड़न के विरोध में दलित साहित्य का जन्म हुआ है। यही कारण है कि उनकी भाषा में आक्रोश एवं विद्रोह का स्वर ज्यादा मुखर हुआ है।

आज हिंदी के लगभग सभी विधाओं में दलित साहित्य की रचनाएँ हो रही हैं। दलित साहित्य का आरम्भ एक विमर्श के रूप में 'सारिका' पत्रिका अप्रैल-मई, 1975 के दलित विशेषांक से माना जाता है। उसके बाद 'हंस' पत्रिका ने दलित विमर्श को उत्कृष्टता पर पहुँचाने का सराहनीय कार्य किया; साथ ही अन्य विमर्शों की भी शुरुआत की। आज दलित कविता, दलित आत्मकथा, दलित उपन्यास, दलित कहानी, दलित आलोचना आदि के माध्यम से दलित समुदाय अपनी भावनाओं को आम जनता तक पहुँचाने का सराहनीय कार्य कर रहे हैं।

दलित कविता — दलित कविता में कवि अपने तथा अपने समाज के जीवन-संघर्षों की अभिव्यक्ति देता है। संत रविदास को प्रथम दलित कवि माना जाता है; वहीं दलित साहित्य की पहली कविता हीराडोम-कृत 'एक अछूत की शिकायत' से माना जाता है, जो 1914 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इसी समय स्वामी अछूतानंद भी दलित कविता लिख रहे थे। एक विमर्श के रूप में दलित कविता का आरम्भ 20वीं सदी के अंतिम दो दशकों से माना जा सकता है। 21वीं सदी की दलित कविताओं में विद्रोह एवं आक्रोश का अक्रामक रूप दिखता है, जिसकी गूँज जयप्रकाश कर्दम की कविता 'गुंगा नहीं था मैं' में सुना जा सकता है। वे लिखते हैं;

“झूठे है वे लोग जो कहते हैं देश में जातिवाद
आखिरी सांस ले रहा है धोखेबाज हैं वे लोग जो कहते हैं



अस्पृश्यता का जनाजा निकल चुका है

जब तक स्मृतियां रहेंगी
रामायण, गीता और वेद रहेंगे
तब तक वर्ण शुचिता रहेगी।⁶

भारतीय समाज ने दलितों के मौलिक अधिकार ही नहीं छीने, बल्कि उनकी अपनी ज़मीन व अन्य सम्पत्ति पर भी उनका अधिकार नहीं रहने दिया। ओम प्रकाश वाल्मीकि की कविता 'ठाकुर का कुआ' इन्हीं सामाजिक विसंगतियों का पर्दाफाश करती है—

“चुल्हा मिट्टी का मिट्टी तलाब की तालाब ठाकुर की।”⁷
मलखान सिंह की कविता 'सुनो ब्राह्मण' वर्ण व्यवस्था पर तीखेपन के साथ प्रहार करती है—

“सुनो ब्राह्मण!
हमारी दास्तां का सफर
तुम्हारे जन्म से शुरू होता है
और इसका अंत भी
तुम्हारे अंत के साथ होगा।”⁸

दलित आत्मकथा — किसी भी दलित द्वारा लिखी गई आत्मकथा सिर्फ उनकी जीवन गाथा नहीं होती, बल्कि उनके समाज की भी जीवन गाथा होती है। हिंदी में दलित साहित्य को एक विशिष्ट पहचान 'आत्मकथा' द्वारा ही मिली। 'आत्मकथा' में लेखक अपनी स्वानुभूत जीवन की आत्माभिव्यक्ति करता है। दलित आत्मकथा सम्पूर्ण दलित समाज का प्रतिनिधित्व करता है। 'जूठन' आत्मकथा में ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं; “मेरी माँ” सुखदेव सिंह के बेटे की शादी में दस बारह दिन तक काम किए थे। शादी में जब लोग खाना खाकर चले गए तो मेरी माँ ने सुखदेव सिंह से कहा—“चौधरी जी ईब तो सब खाणा खा के चले गए म्हारे जाकतों कू भी एक पत्तल पर धर के कुछ दे दो। वो बी इस दिन का इंतजार कर रे ते। सुखदेव सिंह जूठी पतलों से भरे टोकरे की तरफ इशारा करके कहा—टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है, ऊपर से जाकतों के लिए खाणा माँग री है? अपनी औकात में रह चूहड़ी उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन। यह सूनकर माँ ने टोकरा वही बिखेर दिया और कहा—इसे ठाके अपने घर धर ले। कल तड़के बारातियों को नाश्ते में खिला देना।”⁹ ऐसा लगता है, जैसे 'जूठन' दलित जीवन की नियति है। वाल्मीकि जी कहते हैं; “जाति” के नाम पर जो खरोंच मिली उन्हें भरने के लिए युग भी कम पड़ेगे।¹⁰ “दोहरा अभिशाप” कौशल्या बैसन्त्री की हिंदी दलित साहित्य की पहली स्त्री आत्मकथा मानी जाती है, जिसमें एक दलित स्त्री को दोहरे अभिशाप से गुजरना पड़ता है। वह कहती हैं; “सवर्ण ही दलितों का शोषण नहीं करते बल्कि दलित भी दलित का शोषण करने

से नहीं चुकते। और उनमें भी यदि वह शोषण स्त्री का है तो उसे यह अभिशाप सिर्फ दोहरे ही नहीं बल्कि कितने स्तरों पर भोगना पड़ता है।”¹¹ दलित आत्मकथा की विशिष्टता है उसकी भाषा, जो जीवन के कटु अनुभवों को तटस्थता के साथ अभिव्यक्त करती है। तुलसीदास की आत्मकथा 'मुर्दहिया' भारतीय समाज की विडम्बना और दलित समाज की त्रासदी का आख्यान है। 'मुर्दहिया' यानि गाँव का वह कोना जहाँ मूर्दे फूँके जाते हैं। 'मुर्दहिया' आत्मकथा का शीर्षक मात्र नहीं है अपितु तुलसीदास की रचना की आत्मा है।

दलित उपन्यास — हिंदी दलित उपन्यासों का क्षेत्र बहुत व्यापक नहीं हुआ है, फिर भी कुछ ऐसे उपन्यासकार सामने आए हैं जिन्होंने न केवल उपन्यास लिखे बल्कि उपन्यास को एक नयी दिशा दी। दलित उपन्यास दलित समाज में व्याप्त अंधविश्वास, कुरीतियाँ, कुंठापन एवं जहालत को समाप्त कर सामान्य जीवन जीने के लिए जागरुक करता है; साथ ही सामाजिक व्यवस्था द्वारा होने वाले शोषण, उपेक्षा और अन्याय के खिलाफ आक्रोश भी पैदा करता है। जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास 'छप्पर' दलित जीवन में बदलाव लाने का एक स्वप्न है। 'छप्पर' उपन्यास का उद्देश्य दलित समाज को एक शिक्षित समाज में स्थापित करने का जद्दोजहद है। “चंदन से प्रभावित और प्रेरित होकर बच्चों के अलावा, युवा, वृद्ध और महिलाओं ने भी पढ़ना—लिखना शुरू किया। संतनगर ही नहीं अपितु शहर की अन्य दलित बस्तियों से भी लोग उसके पास पढ़ने के लिए आने लगे।”¹² सत्यप्रकाश का उपन्यास 'जस तस भई सवेर' दलितों में फैले धार्मिक अंधविश्वासों और रूढ़िवादी परम्पराओं की वास्तविकता का पोल खोलता है। मोहनदास नैमिशराय का उपन्यास 'मुक्तिपर्व' में दलित समाज की मुक्ति की गुहार है। आज़ादी के बाद भी दलित समाज, वर्णवादी समाज में कैद है और यह उपन्यास इसी कैद की छटपटाहट है। मोहनदास नैमिशराय की एक और उपन्यास 'आज बाजार बंद है' जिसमें दलित वेश्याओं की ज़िंदगी का दोहरा शोषण दिखता है। उपन्यास में डाकिया पार्वती से कहता है; “देखो; परिया की बेटे देवदासी बन गई तो क्या। अरे शंकराचार्य क्या अछूत देवदासी को पत्र लिखेंगे।”¹³ इस प्रकार दलित उपन्यासों का मूल स्वर; उपेक्षित जन समूहों के सामाजिक न्याय, समता, मुक्ति तथा अपने अस्तित्व की पहचान है।

दलित कहानी — दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलित जीवन के भोगे हुए यथार्थ और वर्णवादी व्यवस्था के विरुद्ध तीव्र आक्रोश का चित्रण करते हैं; साथ ही भारतीय समाज की सभी विसंगतियों का पर्दाफाश भी करते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी



‘पच्चीस चौका डेढ़ सौ’ एक सशक्त कहानी है। इस कहानी में दिखाया गया है कि किस तरह ब्याज पर दिए गए पैसों का गलत हिसाब कर गरीब दलितों को ठगा जाता है। यह कहानी पाठक की आंतरिक संवेदना को झकझोर कर रख देता है। जयप्रकाश कर्दम की कहानी ‘चमार’ है, जिसमें सुख्खा चमार को गाँव के सवर्ण उसका बहिष्कार कर देते हैं। उसका जुर्म यह है कि वह अपने बेटे को पढ़ाना चाहता है। उसका स्वाभिमान जग चुका है। वह अब दबू बन कर नहीं रहना चाहता है। वह स्वयं भूखा प्राण देने को तैयार है पर बेटे को नरक भरी ज़िंदगी देने को तैयार नहीं। रमणिका गुप्ता की कहानी ‘बहु जूठाई’ दलित समाज की अमानवीय प्रथा की त्रासद-कथा है। गाँव में जैसे ही नयी दुल्हन आती है, उसकी पहली डोली ठाकुर के घर पर उतरती है और पहली रात उसे ठाकुर की दुल्हन बनकर बितानी पड़ती है। उसके बाद ठाकुर की जूठन बनकर अपने पति के घर जाती है, पर माधो निर्भीक होकर इसका विरोध करता है। वह कहता है; “नहीं जाएगी डोली ठाकुर के यहाँ।”¹⁴ डॉ० कुसुम मेघववाल की कहानी ‘समय के शिलालेख’ महत्वपूर्ण दलित कहानी है, जिसमें दिखाया गया है जब दलित व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त कर अधिकारी बन जाता है; वह सवर्णवादी समाज के लिए न काबिले बर्दाश्त होता है, इसीलिए वे उन अधिकारी को भी ‘चमट्टा’ कहकर संबोधित करता है। इस कहानी में जब ठाकुर को पता चलता है कि इस जिले का कलेक्टर चमट्टा है तो वह कहता है; “देख लेंगे इसे भी। चाँदी के जूते के आगे कौन ठहरता है, वैसे ही इनमें कौन सी बुद्धि होती है। गरीब होते हैं बेचारे। आरक्षण की बैसाखियों के सहारे बन जाते हैं कलेक्टर।”¹⁵ इस प्रकार देखा जा सकता है कि दलित कहानियाँ न सिर्फ दलित समाज की वेदना एवं प्रताड़ना को व्यक्त करती हैं बल्कि सवर्ण वर्ण की कुत्सित मानसिकता पर भी प्रहार करती हैं।

दलित आलोचना – आलोचना अपने समय और परिवेश के संदर्भ में किसी रचना के मर्म बिन्दू तक पहुँचने की अन्तर्दृष्टि है। किसी भी कृति को उसके गुण-दोषों के साथ तटस्थ, तर्कपूर्ण एवं सूक्ष्म विश्लेषण करना ही आलोचना है। अनुभूति की प्रमाणिकता दलित आलोचना का मुख्य ध्येय है। दलित साहित्य का आलोचक तटस्थ भाव से रचना की गहराइयों तक प्रवेश कर उसके सम्पूर्ण भावों को उद्घाटित करता है। आज दलित आलोचनाएँ भी लिखी जान लगी हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य के मूल्यांकन के लिए एक अलग सौंदर्यशास्त्र की माँग करते हैं, जिनके आधार पर साहित्यिक आलोचना के लिए नए मापदंडों का विकास हो रहा है। डा. एन. सिंह ने अपनी

पुस्तक ‘दलित साहित्य के प्रतिमान’ में हिंदी दलित साहित्य के इतिहास को बहुत ही विस्तार से लिखा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने आलोच्य कृति ‘दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र’ में व्यवहारिक तरीके से लिखे गए विचारों तथा लेखों का समीक्षात्मक विश्लेषण एवं मूल्यांकन करते हुए हिंदी दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र का नवीन प्रतिमान स्थापित करते हैं। डा. धर्मवीर अपनी पुस्तक ‘कबीर के आलोचक’ में कबीर के साहित्य का मूल्यांकन करते हुए उन्हें एक दलित कवि के रूप में देखते हैं। कँवल भारती ‘दलित विमर्श की भूमिका’ में दलित साहित्य के इतिहास को व्याख्यायित किया है, साथ ही दलित विमर्श को अंबेडकर, हरिजन, कम्युनिस्ट आदि आंदोलनों से जोड़कर नयी अर्थवत्ता पर भी प्रकाश डाला है। जयप्रकाश कर्दम का आलोचनात्मक ग्रन्थ ‘इक्कीसवीं सदी में दलित आंदोलन, साहित्य एवं समाज चिंतन’ हैं, जिसमें उन्होंने दलितों की असल समस्या वर्ण और जाति आधारित समाज की अस्वीकृति को माना है, और उसका तार्किक विश्लेषण भी किया है। रमणिका गुप्ता की कृति ‘दलित चेतना : साहित्यिक एक सामाजिक सरोकार’ है, जिसमें दलित आंदोलन को मार्क्सवाद और दलित साहित्य के बीच के अंतर्विरोधों का पड़ताल करती है। इसमें दलित आलोचकों की तरह ही रमणिका जी का भी आक्रोश एवं विद्रोह का स्वर मुखर हुआ है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि हिंदी आलोचना के क्षेत्र में दलित आलोचना ने एक नवीन मापदंडों के साथ नया पैमाना बनाया और पारम्परिक आलोचना को नकारा। ओमप्रकाश वाल्मीकि का मानना है; “हिंदी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र संस्कृत के काव्यशास्त्र के आधार पर तैयार किया गया है, जिसके तहत उसकी तमाम मान्यताएँ सामंतवादी हैं और उसके जीवन मूल्य ब्रह्मणवादी विचारधारा से संचालित होते हैं। उस साहित्य में आनन्द और रस की जो महत्ता स्थापित होती है उसे दलित साहित्य स्वीकार नहीं करता है।”¹⁶ अतः हिंदी आलोचना के क्षेत्र में दलित आलोचकों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। दलित आलोचकों ने पारम्परिक परिपाटी पर चलती आ रही आलोचना का बहिष्कार किया और दलित साहित्य से जुड़े सभी सरोकारों पर उसी रूप में व्याख्या की, जिस रूप में भारतीय समाज द्वारा दलित समाज के साथ होता है। अतः हिंदी दलित आलोचना एक अलग सौंदर्यशास्त्र की माँग करता है और तटस्थ मूल्यांकन की अपेक्षा भी करता है।

भाषा एवं शिल्पगत संरचना – दलित साहित्य केवल साहित्यिक भाषा के रूप में ही नहीं आया बल्कि वंचित वर्ग की मूक भाषा के स्थान पर एक आवाज़ या नवीन स्वर बनकर आया है। यह स्वर विद्रोहात्मक एवं



आक्रोश से भरा हुआ है। दलित साहित्य की भाषा के दो वैशिष्ट्य हैं। पहला, लोकजीवन के यथार्थ रूप में सम्प्रेषित करने वाली अमिधा शक्ति वाली भाषा। दूसरा, आक्रोश बयान करने वाली बेलौस मारक भाषा। दलित साहित्य ने संस्कृतनिष्ठ, परम्परागत साहित्यिक भाषा, शिल्प व शैली को नकारते हुए सर्वग्राह्य भाषा का प्रयोग किया। यह भाषा दलित वर्ग की पीड़ा, व्यथा, तिरस्कार तथा शोषण की यथार्थ अभिव्यक्ति है। दलित साहित्य की भाषा नकार और विरोध की भाषा है। दलित भाषा पर कई आरोप लगाए गए, विशेषकर भाषा और शिल्प की गुणवत्ता को लेकर। यह आरोप बिल्कुल निराधार हैं, क्योंकि कोई भी साहित्य साहित्यकार के अनुभव के कारण सहज होता है और सहज अनुभव पुराने शिल्प का मोहताज नहीं होता; वह अपने लिए नया कथ्य, नये शिल्प एवं नयी भाषा गढ़ ही लेता है। मुद्राराक्षस का मानना है; “कोई भी नया कथ्य अपने पूर्व की विचार परम्परा से विद्रोह करता है। उतनी सीमा तक परम्परा के सौंदर्यबोध संबंधी मूल्यों को भी तोड़ता है। वह अपनी भाषा, अलंकारशास्त्र और अपना छंद—तंत्र बनाता है। कबीर ने यही किया था। उन्होंने संस्कृत का प्रयोग भी नहीं किया था और तत्कालीन सवर्ण कथ्य की अवधी और ब्रज को भी स्वीकार नहीं किया था। उन्होंने जिस भाषा का आविष्कार किया था; वह देश के बहुसंख्यक गैर साहित्यिक समाज के बोध की भाषा थी। इसीलिए मात्रिक छंदों का स्वरूप भी उनका अपना था।”¹⁷

सवर्ण लोगों के शब्दों, गालियों और धमकियों दलितों के दिल व दिमाग पर सदा प्रहार करते रहे हैं। चोट की यह प्रतीति ही दलित साहित्यकारों की भाषा को अक्रोशी एवं विद्रोही बनाती है। इसीलिए ओमप्रकाश वाल्मीकि चाहते हैं कि उनके शब्द असहमति में सर हिलाना सिख जाएँ;

“मैं भी चाहता हूँ मेरे शब्द सीख जाएँ
असहमति में सिर हिलाना।”¹⁸

मोहनदास नैमिशराय का भी मानना है; “शब्द
सिसकते नहीं बोलते हैं चोट करते हैं।”¹⁹

हिंदी दलित साहित्य के बिंब, प्रतीक एवं मिथक भी सामाजिक यथार्थ को उजागर करते हैं। बिंब दलित जीवन की त्रासदी और उसके यथार्थ को व्यक्त करते हैं—वहीं प्रतीक द्वारा भावना, विचार, बोध आदि को अर्थपूर्ण एवं प्रभावशाली बनाता है। धर्म, दर्शन और पौराणिक मिथकों द्वारा दलित जीवन की विसंगतियों और सामाजिक संदर्भों की वास्तविक व्याख्या की जाती है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि उनके कथ्य, शिल्प एवं भाषा स्वतः उनकी रचनाओं में समाहित हो गए हैं। दलित साहित्य की भाषा आम जनमानस की भाषा होने के कारण ही उसकी यथार्थ

अभिव्यक्ति हो पाई है।

शिल्पगत प्रवृत्तियाँ — हिंदी दलित साहित्य की

शिल्पगत प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

1. हिंदी दलित साहित्य हीनभावना से मुक्त होना चाहता है।
2. विवेकपूर्ण खंडन—मंडन द्वारा समतामूलक समाज का निर्माण करना चाहता है।
3. दलित साहित्य में मुख्य रूप से वर्णवाद एवं जातिवाद के प्रति आक्रोश दिखता है।
4. दलित साहित्यकार श्रमिक संस्कृति में विश्वास करता है और समाज में स्वाभिमान के साथ जीना चाहता है।
5. छुआछूत, नारी—शोषण, श्रमिक—शोषण एवं धार्मिक—आडम्बरों का आत्मपरक विश्लेषण हिंदी दलित साहित्य का मुख्य ध्येय है।
6. दलित साहित्य जीवन—व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र की प्रामाणिक अनुभूतियों का सृजन करता है।
7. हिंदी दलित साहित्य में अपसंस्कृति से असहमति और उसके प्रति प्रतिरोध दिखता है।
8. दलित साहित्य एक स्वस्थ, शिक्षित, समृद्ध, सशक्त एवं समतामूलक राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धता की मांग करता है।
9. दलित साहित्य पारम्परिक शिल्प एवं भाषा को नकारते हुए नवीन शिल्प एवं भाषा का विस्तार देता है।
10. उनकी भाषा का स्वरूप विद्रोही एवं आक्रोशपूर्ण है।
11. हिंदी दलित साहित्य एक अलग सौंदर्यभाषा की मांग करता है।

दलित साहित्य की चुनौतियाँ — आज विमर्शों

के दौर में जहां दलित साहित्य को एक नयी पहचान मिली है; वहीं उनके सामने कई प्रकार की चुनौतियाँ भी हैं।

1. दलित साहित्यकारों के मध्य ‘गुटबाजी’ दलित साहित्य के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। दलित साहित्यकारों के गुटबाजी का प्रमाण है कि दलित साहित्य के अलावा ‘अम्बेडकर साहित्य’ और ‘बहुजन साहित्य’ की चर्चा हो रही है। यही कारण है कि दलित साहित्यकार सम्यक् दलित चेतना के बजाय खंडित दलित अस्मिता के पहरोकार बन रहे हैं।
2. समाज का वर्णवादी पक्षपात जब साहित्य में दिखने लगता है, तब वह और अधिक उग्र रूप ले लेता है। यही कारण है कि दलित साहित्य की गुणवत्ता को कम आँका जाता है।
3. दलित साहित्य में प्रकाशन संबंधी समस्याएँ भी



देखी जाती हैं, क्योंकि अर्थाभाव के कारण दलित साहित्य पत्रिकाएँ अधिक नहीं हैं। दलित साहित्यकारों का यह मानना कि मेरी रचना मेरा भोगा हुआ यथार्थ है, इसीलिए वे अपनी प्रतीक, बिंब और शब्दों का मनमाना प्रयोग करते हैं। इसीलिए गैर दलित साहित्यिक पत्रिका उनकी भाषा को शिष्ट नहीं मानते हुए उनकी रचनाओं का प्रकाशित करने से कतराते हैं।

4. गुटबंदीय वैमनस्य के कारण दलित साहित्य की सम्यक् आलोचना नहीं हो पाती है। दूसरी तरफ दलित साहित्यकार गैर-दलित आलोचकों पर यह आरोप लगाते हैं कि उनका भोगा हुआ यथार्थ नहीं होता, इसलिए वे तटस्थ आलोचना नहीं कर सकते। इनही आरोप-प्रत्यारोप में उलझने के कारण दलित साहित्य की तटस्थ आलोचना नहीं हो पाती है।

5. पुरस्कार व सम्मान साहित्यकारों के लिए प्रोत्साहन का कार्य करता है, पर पुरस्कार व सम्मान की दृष्टि से भी दलित साहित्यकारों की उपेक्षा की जाती है, जिसके कारण भी वे हीनभावना से ग्रसित होने लगते हैं। इस प्रकार पुरस्कारों एवं सम्मानों के क्षेत्र में दलित साहित्यकारों के साथ होने वाले पक्षपातपूर्ण व्यवहार दलित साहित्य के विकास में नकारात्मक प्रभाव डालता है।

अतः हिंदी दलित साहित्य के समीक्षात्मक विश्लेषण करने के बाद दलित साहित्य का एक नवीन स्वरूप उभरकर आता है। आज भी भारतीय समाज एवं साहित्य में दलित साहित्य को कई प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। भारत एक लोकतांत्रिक देश है। 'लोकतंत्र' यानी जनता द्वारा संचालित देश, लेकिन सामाजिक व्यवस्था में बिल्कुल बौना। जहाँ आज भी 'जातिव्यवस्था' द्वारा ही समाज का संचालन होता है। विद्वानों का मानना है कि शिक्षा के प्रचार-प्रसार से दलितों की स्थितियों में सुधार लाया जा सकता है, पर प्रश्न यह है कि क्या समाज में पक्षपात रहित शिक्षा की व्यवस्था है। यदि दलित शिक्षा प्राप्त कर भी लेते हैं, तब भी सभ्य समाज की मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आता। सुशीला टाकभौरे का मानना है कि यदि हम दलित उच्च शिक्षा भी प्राप्त कर ले तब भी समाज में हमारा सिर्फ तिरस्कार ही होता है। वह अपनी कविता में लिखती हैं;

"पी-एच0डी0 प्राप्त कॉलेज की अध्यापिका, जाति के नाम पर, आज भी कहलाती रही सिर्फ झाड़ूवाली।"²⁰ ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी आत्मकथा 'जूठन' में कहते हैं; 'कुत्ते, बिल्ली, गाय, भैंस को छूना बुरा नहीं था, लेकिन यदि चुहड़े का स्पर्श हो जाय तो पाप लग जाता है।'²¹ आज दलित वर्ग भी शिक्षित हो रहा है; संविधान में भी उन्हें

अधिकार दे दिए गए हैं। समाज में जागरूकता लाने के लिए वर्कशॉप, सेमीनार, कॉन्फ्रेंस इत्यादि भी कराए जा रहे हैं। पर प्रश्न यह है कि-क्या दलितों की स्थितियों में सुधार आ गया है ?

मैं आप लोगों को इसी साल 2020 के फरवरी महीने में होने वाले कुछ घटनाओं की ओर ध्यान आग्रसित करना चाहूंगी, जिससे स्पष्ट हो जाएगा कि आज भी हमारे समाज में उन्हें उचित स्थान नहीं मिल सका है।

— 15 फरवरी को कानपुर में दलितों के घरों में तोड़फोड़ की गई, आग लगाई गई और बच्चे, बूढ़े, जवान, औरतें सभी को बेरहमी से पीटा गया; सिर्फ इसलिए कि दलित समुदाय द्वारा 'भीम-बुद्ध कथा' का आयोजन किया गया था, जिसके लिए इन लोगों ने प्रशासन से स्वीकृति भी ले रखी थी।

— दूसरी घटना गुजरात की है, जहाँ एक 'आर्मी' दूल्हे को घोड़ी पर इसलिए चढ़ने नहीं दिया गया, क्योंकि वह दलित है। 'आर्मी' जिसे हम 'देश रक्षक' कहते हैं, जिसका न कोई जाति होता है, न धर्म, न सम्प्रदाय; वह तो देश का एक सच्चा सिपाही होता है। जब उसके साथ ऐसा भेदभाव हो सकता है, तो सामान्य दलितों की क्या स्थितियाँ हो सकती हैं?

इसीलिए विद्वानों का यह कहना ठीक ही प्रतीत होता है कि 'भारत में 'जाति' कभी भी खत्म न होने वाली संस्था है।' आज हमारा समाज पहले से भी ज्यादा संवेदनहीन हो गया है। मानवता खत्म होती जा रही है; सबसे बड़ी बात की अभिव्यक्ति की आजादी भी नहीं रह गई है। जातिभेद, वर्गभेद एवं धर्मभेद हमारे समाज के लिए अभिशाप बन गया है। आज भी हमारा समाज रूढ़िवादी मान्यताओं पर चलती है, जिसके कारण पूर्णरूप से वैज्ञानिक दृष्टिकोण को नहीं अपना पाते हैं और न ही अपनी मानसिकता में बदलाव लाते हैं। यही कारण है कि हमारा देश दुनिया से लगभग 50 वर्ष पिछड़ा हुआ है। यदि समाज एवं साहित्य में दलित वर्ग को समान स्थान दिलाना है; तो सबसे पहले समाज को मानवीय और मनुष्य को सामाजिक बनना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शत्रुघ्न कुमार; 'अग्निशिखा', संस्करण-2005, नवभारत प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 59।
2. अशोक तिवारी; प्रतियोगिता साहित्य, हिंदी प्रश्न पत्र-III कोड-147, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, पृ. 13।
3. <https://shodhganga.inflibnet.ac.in>> दलित विमर्श : तात्त्विक विवेचन।



4. वही प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 75
5. वही 13. मोहनदास नैमिशराय; 'आज बाजार बंद है', प्रकाशन-2004, पृ. 145
6. जयप्रकाश कर्दम; 'गूँगा नहीं था मैं', पृ. 66, समकालीन साहित्य और दलित विमर्श, संपादक-प्रो. संजय एल0 मादार, संस्करण-2017, तक्षशिला प्रकाशन, पृ. 154 से उद्धृत। 14. shodhganga.inflibnet.ac.in>...PDFpage1FREM (NS) दलित साहित्य : अवधारणा और विकास वही
7. <https://www.bbc.com/hindi/india/2013/09/130912-hindi-special-dalit-sahitya-1kd> 15. वाङ्मय पत्रिका, संपादक-फिरोज अहमद, जुलाई-दिसंबर-2006, अलीगढ़, पृ. 107
8. वही 17. मुद्राराक्षस; 'साहित्य की संस्कृति में दलित', राष्ट्रीय सहारा, 29 नवम्बर, 1998, पृ. 14
9. ओमप्रकाश वाल्मीकि; 'जूठन', संस्करण-1997, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 19 18. ओमप्रकाश वाल्मीकि; 'अब और नहीं', संस्करण -2009, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 82
10. वही, पृ. 66 19. रमणिका गुप्ता; 'युद्धरत आम आदमी', जुलाई-सितंबर-1998, पृ. 45
11. कौशल्या बैसंत्री; 'दोहरा अभिशाप', समकालीन साहित्य और दलित विमर्श, संपादक-प्रो. संजय एल0 मादार, पृ. 231 से उद्धृत। 20. प्रो. संजय एल0 मादार संपादक, संस्करण-2017, तक्षशिला प्रकाशन, पृ. 17 से उद्धृत।
12. जयप्रकाश कर्दम; 'छप्पर', संस्करण-2003, राहुल 21. वही, पृ. 221 से उद्धृत।
